

वेदान्त दर्शन

वेदान्त ज्ञानयोग का एक स्रोत है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करता है। इसका मुख्य स्रोत उपनिषद् है जो वेद ग्रंथों और वैदिक साहित्य का सार समझे जाते हैं। उपनिषद् वैदिक साहित्य का अंतिम भाग है, इसीलिए इसको वेदान्त कहते हैं। कर्मकांड और उपासना का मुख्यतः वर्णन मंत्र और ब्राह्मणों में है, ज्ञान का विवेचन उपनिषदों में। 'वेदान्त' का शाब्दिक अर्थ है - 'वेदों का अंत' अथवा सार।

वेदान्त की तीन शाखाएँ जो सबसे ज्यादा जानी जाती हैं वे हैं: अद्वैत वेदान्त, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत। आदि शंकराचार्य, रामानुज और श्री मध्वाचार्य जिनको क्रमशः इन तीनों शाखाओं का प्रवर्तक माना जाता है, इनके अलावा भी ज्ञानयोग की अन्य शाखाएँ हैं। ये शाखाएँ अपने प्रवर्तकों के नाम से जानी जाती हैं जिनमें भास्कर, वल्लभ, चैतन्य, निम्बार्क, वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वर और विज्ञान भिक्षु। आधुनिक काल में जो प्रमुख वेदान्ती हुये हैं उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, स्वामी शिवानंद स्वामी करपात्री और रमण महर्षि उल्लेखनीय हैं। ये आधुनिक विचारक अद्वैत वेदान्त शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे वेदान्तों के प्रवर्तकों ने भी अपने विचारों को भारत में भलिभाँति प्रचारित किया है परन्तु भारत के बाहर उन्हें बहुत कम जाना जाता है। संतों में भी ज्ञानेश्वर महाराज, तुकाराम महाराज आदि। संत पुरुषों ने वेदान्त के ऊपर बहुत ग्रंथ लिखे हैं आज भी लोग संतों के उपदेशों के अनुकरण करते हैं।

'वेदान्त' का अर्थ

'वेदान्त' का शाब्दिक अर्थ है 'वेदों का अन्त'। आरम्भ में उपनिषदों के लिए 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग हुआ किन्तु बाद में उपनिषदों के सिद्धान्तों को आधार मानकर जिन विचारों का विकास हुआ, उनके लिए भी 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग होने लगा। उपनिषदों के लिए 'वेदान्त' शब्द के प्रयोग के प्रायः तीन कारण दिये जाते हैं -

(1) उपनिषद् 'वेद' के अन्त में आते हैं। 'वेद' के अन्दर प्रथमतः वैदिक संहिताएँ- ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व आती हैं और इनके उपरान्त ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् आते हैं। इस साहित्य के अन्त में होने के कारण उपनिषद् वेदान्त कहे जाते हैं।

(2) वैदिक अध्ययन की दृष्टि से भी उपनिषदों के अध्ययन की बारी अन्त में आती थी। सबसे पहले संहिताओं का अध्ययन होता था। तदुपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर यज्ञादि गृहस्थोचित कर्म करने के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ती थी। वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम में प्रवेश करने पर आरण्यकों की आवश्यकता होती थी, वन में रहते हुए लोग जीवन तथा जगत् की पहली को सुलझाने का प्रयत्न करते थे। यही उपनिषद् के अध्ययन तथा मनन की अवस्था थी।

(3) उपनिषदों में वेदों का 'अन्त' अर्थात् वेदों के विचारों का परिपक्व रूप है। यह माना जाता था कि वेद-वेदांग आदि सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी बिना उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त किये हुए मनुष्य का ज्ञान पूर्ण नहीं होता था।

आचार्य उदयवीर शास्त्री के अनुसार 'वेदान्त' पद का तात्पर्य है- वेदादि में विधिपूर्वक अध्ययन, मनन तथा उपासना आदि के अन्त में जो तत्त्व जाना जाये उस तत्त्व का विशेष रूप से यहाँ निरूपण किया गया हो, उस शास्त्र को 'वेदान्त' कहा जाता है।

वेदान्त का साहित्य

'वेदान्त' शब्द मूलतः उपनिषदों के लिए प्रयुक्त होता था। अलग-अलग संहिताओं तथा उनकी शाखाओं से सम्बद्ध अनेक उपनिषद् हमें प्राप्त हैं। जिनमें प्रमुख तथा प्राचीन हैं - ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक। इन उपनिषदों के दार्शनिक सिद्धान्तों में काफी कुछ समानता है किन्तु अनेक स्थानों पर विरोध भी प्रतीत होता है। कालान्तर में यह आवश्यकता अनुभव की गई कि विरोधी प्रतीत होने वाले विचारों में समन्वय स्थापित कर सर्वसम्मत उपदेशों का संकलन किया जाये। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्र की रचना की जिसे वेदान्त सूत्र, शारीरकसूत्र, शारीरकमीमांसा या उत्तरमीमांसा भी कहा जाता है। इसमें उपनिषदों के सिद्धान्तों को अत्यन्त संक्षेप में, सूत्र रूप में संकलित किया गया है।

अद्वैत वेदान्त

गौडपाद (300 ई.) तथा उनके अनुवर्ती आदि शंकराचार्य (700 ई.) ब्रह्म को प्रधान मानकर जीव और जगत् को उससे अभिन्न मानते हैं। उनके अनुसार तत्त्व को उत्पत्ति और विनाश से रहित होना चाहिए। नाशवान् जगत् तत्त्वशून्य है, जीव भी जैसा दिखाई देता है वैसा तत्त्वतः नहीं है। जाग्रत और स्वप्नावस्थाओं में जीव जगत् में रहता है परंतु सुषुप्ति में जीव प्रपञ्च ज्ञानशून्य चेतनावस्था में रहता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव का शुद्ध रूप सुषुप्ति जैसा होना चाहिए। सुषुप्ति अवस्था अनित्य है अतः इससे परे तुरीयावस्था को जीव का शुद्ध रूप माना जाता है। इस अवस्था में नश्वर जगत् से कोई संबंध नहीं होता और जीव को पुनः नश्वर जगत् में प्रवेश भी नहीं करना पड़ता। यह तुरीयावस्था अभ्यास से प्राप्त होती है। ब्रह्म-जीव-जगत् में अभेद का ज्ञान उत्पन्न होने पर जगत् जीव में तथा जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। तीनों में वास्तविक अभेद होने पर भी अज्ञान के कारण जीव जगत् को अपने से पृथक् समझता है। परंतु स्वप्नसंसार की तरह जाग्रत संसार भी जीव की कल्पना है। भेद इतना ही है कि स्वप्न व्यक्तिगत कल्पना का परिणाम है जबकि जाग्रत अनुभव-समष्टि-गत महाकल्पना का। स्वप्नजगत् का ज्ञान होने पर दोनों में मिथ्यात्व सिद्ध है।

विशिष्टाद्वैत वेदान्त

रामानुजाचार्य ने (11वीं शताब्दी) शंकर मत के विपरीत यह कहा कि ईश्वर (ब्रह्म) स्वतंत्र तत्त्व है परंतु जीव भी सत्य है, मिथ्या नहीं। ये जीव ईश्वर के साथ संबद्ध हैं। उनका यह संबंध भी अज्ञान के कारण नहीं है, वह वास्तविक है। मोक्ष होने पर भी जीव की स्वतंत्र सत्ता रहती है। भौतिक जगत् और जीव अलग अलग रूप से सत्य हैं परंतु ईश्वर की सत्यता इनकी सत्यता से विलक्षण है। ब्रह्म पूर्ण है, जगत् जड़ है, जीव अज्ञान और दुःख से घिरा है। ये तीनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं क्योंकि जगत् और जीव ब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म इनकी आत्मा तथा नियंता है। ब्रह्म से पृथक् इनका अस्तित्व नहीं है, ये ब्रह्म की सेवा करने के लिए ही हैं। इस दर्शन में अद्वैत की जगह बहुत्व की कल्पना है परंतु ब्रह्म अनेक में एकता स्थापित करनेवाला एक तत्त्व है। बहुत्व से विशिष्ट अद्वय ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण इसे विशिष्टाद्वैत कहा जाता है। विशिष्टस्य अद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्।

द्वैत वैदांत

मध्व (1197 ई.) ने द्वैत वेदान्त का प्रचार किया जिसमें पाँच भेदों को आधार माना जाता है- जीव ईश्वर, जीव जीव, जीव जगत्, ईश्वर जगत्, जगत् जगत्। इनमें भेद स्वतः सिद्ध है। भेद के बिना वस्तु की स्थिति असंभव है। जगत् और जीव ईश्वर से पृथक् हैं किंतु ईश्वर द्वारा नियंत्रित हैं। सगुण ईश्वर जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक है। भक्ति से प्रसन्न होनेवाले ईश्वर के इशारे पर ही सृष्टि का खेल चलता है। यद्यपि जीव स्वभावतः ज्ञानमय और आनंदमय है परंतु शरीर, मन आदि के संसर्ग से इसे दुःख भोगना पड़ता है। यह संसर्ग कर्मों के परिणामस्वरूप होता है। जीव ईश्वरनियंत्रित होने पर भी कर्ता और फलभोक्ता है। ईश्वर में नित्य प्रेम ही भक्ति है जिससे जीव मुक्त होकर, ईश्वर के समीप स्थित होकर, आनंदभोग करता है। भौतिक जगत् ईश्वर के अधीन है और ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय में यह क्रमशः स्थूल और सूक्ष्म अवस्था में स्थित होता है। रामानुज की तरह मध्व जीव और जगत् को ब्रह्म का शरीर नहीं मानते। ये स्वतःस्थित तत्व हैं। उनमें परस्पर भेद वास्तविक है। ईश्वर केवल इनका नियंत्रण करता है। इस दर्शन में ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है, प्रकृति (भौतिक तत्व) उपादान कारण है।

द्वैताद्वैत वेदान्त

श्रीनिम्बार्काचार्य चरण ने ब्रह्म ज्ञान का कारण एकमात्र शास्त्र को माना है। सम्पूर्ण धर्मों का मूल वेद है। वेद विपरीत स्मृतियाँ अमान्य हैं। जहाँ श्रुति में परस्पर द्वैध (भिन्न रूपत्व) भी आता हो वहाँ श्रुति रूप होने से दोनों ही धर्म हैं। किसी एक को उपादेय तथा अन्य को हेय नहीं कहा जा सकता। तुल्य बल होने से सभी श्रुतियाँ प्रधान हैं। किसी के प्रधान व किसी के गौण भाव की कल्पना करना उचित नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भिन्न रूप श्रुतियों का भी समन्वय करके निम्बार्क दर्शन ने स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध को स्वीकृत किया है। इसमें समन्वयात्मक दृष्टि होने से भिन्न रूप श्रुति का भी परस्पर कोई विरोध नहीं होता। अतएव निम्बार्क दर्शन को 'अविरोध मत' के नाम से भी अभिहित करते हैं।